प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर

भारतीय दर्शन अध्यात्मलक्ष्य हैं। पश्चिमीय दर्शनों की तरह वे मात्र बुद्धि प्रधान नहीं हैं। उनका उद्गम ही आत्मशुद्धि की दृष्टि से हुआ है। वे आत्म-तत्त्व को और उसकी शुद्धि को लक्ष्य में रख कर ही बाह्य जगत का भी विचार करते हैं। इसलिए सभी आस्तिक भारतीय दर्शनों के मौलिक तत्त्व एक से ही हैं।

जैन दर्शन का स्रोत भगवान् महावीर और पार्श्वनाथ के पहले से ही किसी न किसी रूप में चला आ रहा है यह वस्तु इतिहाससिद्ध है। जैन दर्शन की दिशा चारित्र-प्रधान है जो कि मूल आधार आत्म-शुद्धि की दृष्टि से विशेष संगत है। उसमें ज्ञान, भक्ति आदि तत्त्वों का स्थान अवश्य है पर वे सभी तत्त्व चारित्र-पर्यवसायी हों तभी जैनत्व के साथ संगत हैं। केवल जैन परंपरा में ही नहीं बल्कि वैदिक, बौद्ध आदि सभी परंपराओं में जब तक आध्यात्मिकता का प्राधान्य रहा या वस्तुतः उनमें आध्यात्मिकता जीवित रही तब तक उन दर्शनों में तर्क और वाद का स्थान होते हुए भी उसका प्राधान्य न रहा। इसीलिए हम सभी परम्पराओं के प्राचीन ग्रन्थों में उतना तर्क और वादताण्डव नहीं पाते हैं जितना उत्तरकालीन ग्रन्थों में।

आध्यात्मिकता और त्याग की सर्वसाधारण में निःसीम प्रतिष्ठा जम चुकी थी। अतएव उस उस आध्यात्मिक पुरुष के आसपास सम्प्रदाय भी अपने आप जमने लगते थे। जहाँ सम्प्रदाय बने कि फिर उनमें मूल तत्त्व में भेद न होने पर भी छोटी छोटी बातों में और अवान्तर प्रश्नों में मतभेद और तज्जन्य विवादों का होता रहना स्वाभाविक है। जैसे जैसे सम्प्रदायों की नींव गहरी होती गई और वे फैलने लगे वैसे वैसे उनमें परस्पर विचार-संघर्ष भी बढ़ता चला। जैसे अनेक छोटे बड़े राज्यों के बीच चढ़ा-ऊतरी का संघर्ष होता रहता है। राजकीय संघर्षों ने यदि लोकजीवन में क्षोभ किया है तो उतना ही क्षोभ बल्कि उससे भी अधिक क्षोभ साम्प्रदायिक संघर्ष ने किया है। इस संघर्ष में पड़ने के कारण सभी आध्यात्मिक दर्शन तर्कप्रधान बनने लगे। कोई आगे तो कोई पीछे पर सभी दर्शनों में तर्क और न्याय का बोलबाला शुरु हुआ। प्राचीन समय में जो आन्वीक्षिकी एक सर्वसाधारण खास विद्या थी उसका आधार लेकर धीरे धीरे सभी सम्प्रदायों ने अपने दर्शन के अनुकूल आन्वीक्षिकी की रचना की। मूल आन्वीक्षिकी विद्या वैशेषिक दर्शन के साथ घुल मिल गई पर उसके आधार से कभी बौद्ध-परम्परा ने तो कभी मीमांसकों ने, कभी सांख्य ने तो कभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनों ने, कभी अद्वैत वेदान्त ने तो कभी अन्य वेदान्त परम्पराओं ने अपनी स्वतन्त्र आन्वीक्षिकी की रचना शुरू कर दी। इस तरह इस देश में प्रत्येक प्रधान दर्शन के साथ एक या दूसरे रूप में तर्कविद्या का सम्बन्ध अनिवार्य हो गया।

जब प्राचीन आन्वीक्षिकी का विशेष बल देखा तब बौद्धों ने संभवतः सर्व प्रथम अलग स्वानुकूल आन्वीक्षिकी का खाका तैयार करना शुरू किया। संभवतः फिर मीमांसक ऐसा करने लगे। जैन सम्प्रदाय अपनी मूल प्रकृति के अनुसार अधिकतर संयम, त्याग, तपस्या आदि पर विशेष भार देता आ रहा था; पर आसपास के वातावरण ने उसे भी तर्कविद्या की ओर झुकाया। जहाँ तक हम जान पाये हैं, उससे मालूम पड़ता है कि विक्रम की ५ वीं शताब्दी तक जैन दर्शन का खास झुकाव स्वतंत्र तर्क विद्या की ओर न था। उसमें जैसे जैसे संस्कृत भाषा का अध्ययन प्रबल होता गया वैसे वैसे तर्क विद्या का आकर्षण भी बढ़ता गया। पांचवीं शताब्दी के पहले के जैन वाङ्मय और इसके बाद के जैन वाङ्मय में हम स्पष्ट भेद देखते हैं। अब देखना यह है कि जैन वाङ्मय के इस परिवर्तन का आदि सूत्रधार कौन है? और उसका स्थान भारतीय विद्वानों में कैसा है?

आदि जैन तार्किक—

जहाँ तक मैं जानता हूँ, जैन परम्परा में तर्क विद्या का और तर्क प्रधान संस्कृत वाङ्मय का आदि प्रणेता है सिद्धसेन दिवाकर। मैंने दिवाकर के जीवन और कार्यों के सम्बन्ध में अन्यत्र[1] विस्तृत ऊहापोह किया है; यहाँ तो यथासंभव संक्षेप में उनके व्यक्तित्व का सोदाहरण परिचय कराना है।

सिद्धसेन का सम्बन्ध (उनके जीवनकथानकों के अनुसार उज्जैनी और उसके अधिप विक्रम के साथ अवश्य रहा है, पर वह विक्रम कौन सा यह एक विचारणीय प्रश्न है। अभी तक के निश्चित प्रमाणों से जो सिद्धसेन का समय विक्रम की पाँचवीं और छठ्ठी शताब्दी का मध्य जान पड़ता है, उसे देखते हुए अधिक संभव यह है कि उज्जैनी का वह राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय या उसका पौत्र स्कन्दगुप्त होगा। जो कि विक्रमादित्य रूप से प्रसिद्ध रहे।

सभी नये पुराने उल्लेख यही कहते हैं कि सिद्धसेन जन्म से ब्राह्मण थे। यह कथन बिल्कुल सत्य जान पड़ता है, क्योंकि उन्होंने प्राकृत जैन वाङ्मयको

---

१ देखिए गुजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित सन्मतितर्क का गुजराती भाषान्तर, भाग ६, तथा उसीका इंग्लिश भाषान्तर, श्वेताम्बर जैन कोन्फ्रन्स, भायधुनी, बोम्बे, द्वारा प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत में रूपान्तरित करने का जो विचार निर्भयता से सर्व प्रथम प्रकट किया वह ब्राह्मण-सुलभ शक्ति और रुचि का ही द्योतक है। उन्होंने उस युग में जैन दर्शन तथा दूसरे दर्शनों को लक्ष्य करके जो अत्यन्त चमत्कारपूर्ण संस्कृत पद्यबद्ध कृतियों की देन दी है वह भी जन्मसिद्ध ब्राह्मणत्व की ही द्योतक है। उनकी जो कुछ थोड़ी बहुत कृतियाँ प्राप्य हैं उनका एक एक पद और वाक्य उनकी कवित्व विषयक, तर्क विषयक, और समग्र भारतीय दर्शन विषयक तलस्पर्शी प्रतिभा को व्यक्त करता है।

आदि जैन कवि एवं आदि जैन स्तुतिकार—

हम जब उनका कवित्व देखते हैं तब अश्वघोष, कालिदास आदि याद आते हैं। ब्राह्मण-धर्म में प्रतिष्ठित आश्रम व्यवस्था के अनुगामी कालिदास ने लग्नभावना का औचित्य बतलाने के लिए लग्नकालीन नगर प्रवेश का प्रसंग लेकर उस प्रसंग से हर्षोत्सुक स्त्रियों के अवलोकन कौतुक का जो मार्मिक शब्द-चित्र खींचा है वैसा चित्र अश्वघोष के काव्य में और सिद्धसेन की स्तुति में भी है। अन्तर केवल इतना ही है कि अश्वघोष और सिद्धसेन दोनों श्रमणधर्म में प्रतिष्ठित एकमात्र त्यागाश्रम के अनुगामी हैं इसलिए उनका वह चित्र वैराग्य और गृहत्याग के साथ मेल खाए ऐसा है। अतः उसमें बुद्ध और महावीर के गृहत्याग से खिन्न और उदास स्त्रियों की शोकजनित चेष्टाओं का वर्णन है नहीं कि हर्षोत्सुक स्त्रियों की चेष्टाओं का। तुलना के लिए नीचे के पद्यों को देखिए—

अपूर्वशोकोपतनक्लमानि नेत्रोदकक्लिन्नविशेषकाणि।
विवित्तशोभान्यबलाननानि विलापदाक्षिण्यपरायणानि॥
मुग्धोन्मुखाज्ञाश्युपदिष्टवाक्यसंदिग्धजल्पानि पुरःसराणि।
बालानि मार्गाचरणक्रियाणि प्रलंबवस्त्रान्तविकर्षणानि॥
अकृत्रिमस्नेहमयप्रदीपदीनेक्षणाः साश्रुमुखाश्च पौराः।
संसारसात्म्यज्ञजनैकबन्धो न भावशुद्धं जगृहुर्मनस्ते॥

—सिद्ध० ५—१०, ११, १२।

अतिप्रहर्षादथ शोकमूर्छिताः कुमारसंदर्शनलोललोचनाः।
गृहाद्विनिश्चक्रमुराशया स्त्रियः शरत्पयोदादिव विद्युतश्चलाः॥
विलम्बकेश्यो मलिनांशुकाम्बरा निरञ्जनैर्बाष्पहतेक्षणैर्मुखैः।
स्त्रियो न रेजुर्मृजया विनाकृता दिवीव तारा रजनीक्षयारुणाः॥
अरक्तताम्रैश्चरणैरनूपुरैरकुण्डलैराजवकन्धरैर्मुखैः।
स्वभावपीनैर्जघनैरमेखलैरहारयोक्त्रैर्मुषितैरिव स्तनैः॥

—अश्व० बुद्ध० सर्ग ८—२०, २१, २२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मिन् मुहूर्ते पुरसुन्दरीणामीशानसंदर्शनलालसानाम् ।
प्रासादमालासु बभूवुरित्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥ ५६ ॥
विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा ।
तथैव वातायनसंनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥ ५६ ॥
तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपात्राभरणा इवासन् ॥ ६२ ॥
(कालि० कुमार० सर्ग ७.)

सिद्धसेन ने गद्य में कुछ लिखा हो तो पता नहीं है। उन्होंने संस्कृत में बत्तीस बत्तीसियाँ रची थीं, जिनमें से इक्कीस अभी लभ्य हैं। उनका प्राकृत में रचा 'सम्मति प्रकरण' जैनदृष्टि और जैन मन्तव्यों को तर्क शैली से स्पष्ट करने तथा स्थापित करनेवाला जैन वाङ्मय में सर्व प्रथम ग्रन्थ है। जिसका आश्रय उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर दिगम्बर विद्वानों ने लिया है।

संस्कृत बत्तीसियों में शुरू की पांच और ग्यारहवीं स्तुतिरूप हैं। प्रथम की पाँच में महावीर की स्तुति है जब कि ग्यारहवीं में किसी पराक्रमी और विजेता राजा की स्तुति है। ये स्तुतियाँ अश्वघोष समकालीन बौद्ध स्तुतिकार मातृचेट के 'अध्यर्धशतक,' 'चतुःशतक' तथा पश्चाद्वर्ती आर्यदेव के चतुःशतक की शैली की याद दिलाती हैं। सिद्धसेन ही जैन परम्परा का आद्य संस्कृत स्तुतिकार है। आचार्य हेमचन्द्र ने जो कहा है 'क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क्व चैषा' वह बिलकुल सही है। स्वामी समन्तभद्र का 'स्वयंभूस्तोत्र' जो एक हृदयहारिणी स्तुति है और 'युक्त्यनुशासन' नामक दो दार्शनिक स्तुतियाँ ये सिद्धसेन की कृतियों का अनुकरण जान पड़ती हैं। हेमचन्द्र ने भी उन दोनों का अपनी दो बत्तीसियों के द्वारा अनुकरण किया है।

बारहवीं सदी के आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में उदाहरणरूप में लिखा है कि 'अनुसिद्धसेनं कवयः'। इसका भाव यदि यह हो कि जैन परम्परा के संस्कृत कवियों में सिद्धसेन का स्थान सर्व प्रथम है (समय की दृष्टि से और गुणवत्ता की दृष्टि से अन्य सभी जैन कवियों का स्थान सिद्धसेन के बाद आता है) तो वह कथन आज तक के जैनवाङ्मय की दृष्टि से अक्षरशः सत्य है। उनकी स्तुति और कविता के कुछ नमूने देखिये—

स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्रमनेकमेकाक्षरभावलिङ्गम् ।
अव्यक्तमव्याहतविश्वलोकमनादिमध्यान्तमपुण्यपापम् ॥
समन्तमर्वाङ्गुणं निरङ्कं स्वयंप्रभं सर्वगतावभासम् ।
अतीतसंख्यानमनंतकल्पमचिन्त्यमाहात्म्यमलोकलोकम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुहेतुतर्कोपरतप्रपञ्चसद्भावशुद्धाप्रतिवादवादम् ।
प्रणम्य सच्छासनवर्धमानं स्तोष्ये यतीन्द्रं जिनवर्धमानम् ॥

स्तुति का यह प्रारम्भ उपनिषद् की भाषा और परिभाषा में विरोधालङ्कार-गर्भित है ।

एकान्तनिर्गुणमवान्तमुपेत्य सन्तो यत्नार्जितानपि गुणान् जहति क्षणेन ।
क्लीबादरस्त्वयि पुनर्व्यसनोल्बणानि भुंक्ते चिरं गुणफलानि हितापनष्टः ॥

इसमें सांख्य परिभाषा के द्वारा विरोधाभास गर्भित स्तुति है ।

क्वचिन्नियतिपक्षपातगुरु गम्यते ते वचः,
स्वभावनियताः प्रजाः समयतंत्रवृत्ताः क्वचित् ।
स्वयं कृतभुजः क्वचित् परकृतोपभोगाः पुन-
र्नवा विषदवाददोषमलिनोऽस्यहो विस्मयः ॥

इसमें श्वेताश्वर उपनिषद् के भिन्न भिन्न कारणवाद के समन्वय द्वारा वीर के लोकोत्तरत्वका सूचन है ।

कुलिशेन सहस्रलोचनः सविता चांशुसहस्रलोचनः ।
न विदारयितुं यदीश्वरो जगतस्तद्भवता हतं तमः ॥

इसमें इन्द्र और सूर्य से उत्कृष्टत्व दिखाकर वीर के लोकोत्तरत्व का व्यंजन किया है ।

न सदःसु वदन्नशिक्षितो लभते वक्तृविशेषगौरवम् ।
अनुपास्य गुरुं त्वया पुनर्जगदाचार्यकमेव निर्जितम् ॥

इसमें व्यतिरेक के द्वारा स्तुति की है कि हे भगवन् ! आपने गुरुसेवा के बिना किये भी जगत का आचार्य पद पाया है जो दूसरों के लिए संभव नहीं ।

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः ।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः ॥

इसमें सरिता और समुद्र की उपमा के द्वारा भगवान् में सब दृष्टियों के अस्तित्व का कथन है जो अनेकान्तवाद की जड़ है ।

गतिमानथ चाक्रियः पुमान् कुरुते कर्म फलैर्न युज्यते ।
फलभुक् च न चार्जनक्षमो विदितो यैर्विदितोऽसि तैर्मुने ॥

इसमें विभावना, विशेषोक्ति के द्वारा आत्म-विषयक जैन मन्तव्य प्रकट किया है ।

किसी पराक्रमी और विजेता नृपति के गुणों की समग्र स्तुति लोकोत्तर कवित्वपूर्ण है । एक ही उदाहरण देखिए—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकां दिशं व्रजति यद्गतिमद्गतं च तत्रस्थमेव च विभाति दिगन्तरेषु ।
यातं कथं दशदिगन्तविभक्तमूर्ति युज्येत वक्तुमुत वा न गतं यशस्ते ॥

आद्य जैन वादी—

दिवाकर आद्य जैन वादी हैं। वे वादविद्या के संपूर्ण विशारद जान पड़ते हैं, क्यों कि एक तरफ से उन्होंने सातवीं वादोपनिषद् बत्तीसी में वादकालीन सब नियमोपनियमों का वर्णन करके कैसे विजय पाना यह बतलाया है तो दूसरी तरफ से आठवीं बत्तीसी में वाद का पुरा परिहास भी किया है।

दिवाकर आध्यात्मिक पथ के त्यागी पथिक थे और वाद कथा के भी रसिक थे। इसलिए उन्हें अपने अनुभव से जो आध्यात्मिकता और वाद-विवाद में असंगति दिख पड़ी उसका मार्मिक चित्रण खींचा है। वे एक मांस-पिण्ड में लुब्ध और लड़नेवाले दो कुत्तों में तो कभी मैत्री की संभावना कहते हैं; पर दो सहोदर भी वादियों में कभी सख्य का संभव नहीं देखते। इस भाव का उनका चमत्कारी उद्गार देखिए —

ग्रामान्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः ।
स्यात् सख्यमपि शुनोर्भ्रात्रोरपि वादिनोर्न स्यात् ॥ ८, १.

वे स्पष्ट कहते हैं कि कल्याण का मार्ग अन्य है और वादीका मार्ग अन्य ; क्यों कि किसी मुनि ने वाग्युद्ध को शिव का उपाय नहीं कहा है —

अन्यत एव श्रेयांस्यन्यत एव विचरन्ति वादिवृषाः ।
वाक्संरंभं क्वचिदपि न जगाद मुनिः शिवोपायम् ॥

आद्य जैन दार्शनिक व आद्य सर्वदर्शनसंग्राहक—

दिवाकर आद्य जैन दार्शनिक तो है ही, पर साथ ही वे आद्य सर्व भारतीय दर्शनों के संग्राहक भी हैं। सिद्धसेन के पहले किसी भी अन्य भारतीय विद्वान् ने संक्षेप में सभी भारतीय दर्शनों का वास्तविक निरूपण यदि किया हो तो उसका पता अभीतक इतिहास को नहीं है। एक बार सिद्धसेन के द्वारा सब दर्शनों के वर्णन की प्रथा प्रारम्भ हुई कि फिर आगे उसका अनुकरण किया जाने लगा। आठवीं सदी के हरिभद्र ने 'षड्दर्शनसमुच्चय' लिखा, चौदहवीं सदी के माधवाचार्य ने 'सर्वदर्शनसंग्रह' लिखा; जो सिद्धसेन के द्वारा प्रारम्भ की हुई प्रथा का विकास है। जान पड़ता है सिद्धसेन ने चार्वाक, मीमांसक आदि प्रत्येक दर्शन का वर्णन किया होगा, परन्तु अभी जो बत्तीसियां लभ्य हैं उनमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, बौद्ध, आजीवक और जैन दर्शन की निरूपक बत्तीसियां ही हैं। जैन दर्शन का निरूपण तो एकाधिक बत्तीसियों में हुआ है। पर किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी जैन जैनेतर विद्वान् को आश्चर्य चकित करने वाली सिद्धसेन की प्रतिभा का स्पष्ट दर्शन तब होता है जब हम उनकी पुरातनत्व समालोचना विषयक और वेदान्त विषयक दो बत्तीसियों को पढ़ते हैं। यदि स्थान होता तो उन दोनों ही बत्तीसियों को मैं यहाँ पूर्ण रूपेण देता। मैं नहीं जानता कि भारत में ऐसा कोई विद्वान् हुआ हो जिसने पुरातनत्व और नवीनत्व की इतनी क्रान्तिकारिणी तथा हृदयहारिणी एवं तलस्पर्शिनी निर्भय समालोचना की हो। मैं ऐसे विद्वान् को भी नहीं जानता कि जिस अकेले ने एक बत्तीसी में प्राचीन सब उपनिषदों तथा गीता का सार वैदिक और औपनिषद भाषा में ही शाब्दिक और आर्थिक अलङ्कार युक्त चमत्कारकारिणी सरणी से वर्णित किया हो। जैन परम्परा में तो सिद्धसेन के पहले और पीछे आज तक ऐसा कोई विद्वान् हुआ ही नहीं है जो इतना गहरा उपनिषदों का अभ्यासी रहा हो और औपनिषद भाषा में ही औपनिषद तत्त्व का वर्णन भी कर सके। पर जिस परम्परा में सदा एक मात्र उपनिषदों की तथा गीता की प्रतिष्ठा है उस वेदान्त परम्परा के विद्वान् भी यदि सिद्धसेन की उक्त बत्तीसी को देखेंगे तब उनकी प्रतिभा के कायल होकर यही कह उठेंगे कि आज तक यह ग्रन्थरत्न दृष्टिपथ में आने से क्यों रह गया। मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत बत्तीसी की ओर किसी भी तीक्ष्ण-प्रज्ञ वैदिक विद्वान् का ध्यान जाता तो वह उस पर कुछ न कुछ बिना लिखे न रहता। मेरा यह भी विश्वास है कि यदि कोई मूल उपनिषदों का साम्नाय अध्येता जैन विद्वान् होता तो भी उस पर कुछ न कुछ लिखता। जो कुछ हो, मैं तो यहाँ सिद्धसेन की प्रतिभा के निदर्शक रूप से प्रथम के कुछ पद्य भाव सहित देता हूँ।

कभी कभी सम्प्रदायाभिनिवेश वश अपढ़ व्यक्ति भी, आजही की तरह उस समय भी विद्वानों के सम्मुख चर्चा करने की धृष्टता करते होंगे। इस स्थिति का मजाक करते हुए सिद्धसेन कहते हैं कि बिना ही पढ़े पण्डितंमन्य व्यक्ति विद्वानों के सामने बोलने की इच्छा करता है फिर भी उसी क्षण वह नहीं फट पड़ता तो प्रश्न होता है कि क्या कोई देवताएँ दुनियाँ पर शासन करने वाली हैं भी सही? अर्थात् यदि कोई न्यायकारी देव होता तो ऐसे व्यक्तिको तत्क्षण ही सीधा क्यों नहीं करता—

यदशिक्षितपण्डितो जनो विदुषामिच्छति वक्तुमग्रतः।
न च तत्क्षणमेव शीर्यते जगतः किं प्रभवन्ति देवताः॥ (६. १)

विरोधी बढ़ जाने के भय से सच्ची बात भी कहने में बहुत समालोचक हिचकिचाते हैं। इस भीरु मनोदशा का जवाब देते हुए दिवाकर कहते हैं कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुराने पुरुषों ने जो व्यवस्था स्थिर की है क्या वह सोचने पर वैसी ही सिद्ध होगी ? अर्थात् सोचने पर उसमें भी त्रुटि दिखेगी तब केवल उन मृत पुरुषों की जमी प्रतिष्ठा के कारण हाँ में हाँ मिलाने के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ है। यदि विद्वेषी बकते हों तो बकें—

पुरातनैर्या नियता व्यवस्थितिस्तत्रैव सा किं परिचिन्त्य सेत्स्यति।
तथेति वक्तुं मृतरूढगौरवादहन्न जातः प्रथयन्तु विद्विषः॥ (६. ३)

हमेशा पुरातन प्रेमी, परस्पर विरुद्ध अनेक व्यवहारों को देखते हुए भी अपने इष्ट किसी एक को यथार्थ और बाकी को अयथार्थ करार देते हैं। इस दशा से ऊब कर दिवाकर कहते हैं कि—सिद्धान्त और व्यवहार अनेक प्रकार के हैं, वे परस्पर विरुद्ध भी देखे जाते हैं। फिर उनमें से किसी एक की सिद्धि का निर्णय जल्दी कैसे हो सकता है ? तथापि यही मर्यादा है दूसरी नहीं—ऐसा एक तरफ निर्णय कर लेना यह तो पुरातन प्रेम से जड़ बने हुए व्यक्ति को ही शोभा देता है, मुझ जैसे को नहीं—

बहुप्रकाराः स्थितयः परस्परं विरोधयुक्ताः कथमाशु निश्चयः।
विशेषसिद्धावियमेव नेति वा पुरातनप्रेमजलस्य युज्यते॥ (६. ४)

जब कोई नई चीज आई तो चट से सनातन संस्कारी कह देते हैं कि, यह तो पुराना नहीं है। इसी तरह किसी पुरातन बात की कोई योग्य समीक्षा करे तब भी वे कह देते हैं कि यह तो बहुत पुराना है, इसकी टीका न कीजिए। इस अविवेकी मानस को देख कर मालविकाग्निमित्र में कालिदास को कहना पड़ता है कि—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

ठीक इसी तरह दिवाकर ने भी भाष्यरूप से कहा है कि—यह जीवित वर्तमान व्यक्ति भी मरने पर आगे की पिढ़ी की दृष्टि से पुराना होगा; तब वह भी पुरातनों की ही गिनती में आ जायगा। जब इस तरह पुरातनता अनवस्थित है अर्थात् नवीन भी कभी पुरातन है और पुराने भी कभी नवीन रहे; तब फिर अमुक वचन पुरातन कथित है ऐसा मान कर परीक्षा बिना किए उस पर कौन विश्वास करेगा ?

जनोऽयमन्यस्य मृतः पुरातनः पुरातनैरेव समो भविष्यति।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत्॥ (६. ५)

पुरातन प्रेम के कारण परीक्षा करने में आलसी बन कर कई लोग ज्यों ज्यों सम्यग् निश्चय कर नहीं पाते हैं त्यों त्यों वे उलटे मानों सम्यग् निश्चय कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिया हो इतने प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि पुराने गुरु जन मिथ्याभाषी थोड़े हो सकते हैं ? मैं खुद मन्दमति हूँ उनका आशय नहीं समझता तो क्या हुआ ? ऐसा सोचने वालों को लक्ष्य में रख कर दिवाकर कहते हैं कि वैसे लोग आत्मनाश की ओर ही दौड़ते हैं—

विनिश्चयं नैति यथा यथालसस्तथा तथा निश्चितवत्प्रसीदति ।
अबन्ध्यवाक्या गुरवोऽहमल्पधीरिति व्यवस्यन् स्वविधाय धावति ॥

शास्त्र और पुराणों में दैवी चमत्कारों और असम्बद्ध घटनाओं को देख कर जब कोई उनकी समीक्षा करता है तब अन्धश्रद्धालु कह देते हैं, कि भाई ! हम ठहरे मनुष्य, और शास्त्र तो देव रचित हैं; फिर उनमें हमारी गति ही क्या ? इस सर्व सम्प्रदाय-साधारण अनुभव को लक्ष्य में रख कर दिवाकर कहते हैं, कि हम जैसे मनुष्यरूपधारियों ने ही मनुष्यों के ही चरित, मनुष्य अधिकारी के ही निमित्त ग्रथित किये हैं । वे परीक्षा में असमर्थ पुरुषों के लिए अपार और गहन भले ही हों पर कोई हृदयवान् विद्वान् उन्हें अगाध मान कर कैसे मान लेगा ? वह तो परीक्षापूर्वक ही उनका स्वीकार-अस्वीकार करेगा—

मनुष्यवृत्तानि मनुष्यलक्षणैर्मनुष्यहेतोर्निर्यतानि तैः स्वयम् ।
अलब्धपाराण्यलसेषु कर्णवानगाधपाराणि कथं ग्रहीष्यति ॥ (६. ७)

हम सभी का यह अनुभव है कि कोई सुसंगत अर्वाचीन मानवकृति हुई तो उसे पुराणप्रेमी नहीं छुते जब कि वे किसी अस्त-व्यस्त और असंबद्ध तथा समझ में न आ सके ऐसे विचारवाले शास्त्र के प्राचीनों के द्वारा कहे जाने के कारण प्रशंसा करते नहीं अघाते । इस अनुभव के लिए दिवाकर इतना ही कहते हैं कि वह मात्र स्मृतिमोह है, उसमें कोई विवेकपटुता नहीं—

यदेव किंचिद्विषमप्रकल्पितं पुरातनैरुक्तमिति प्रशस्यते ।
विनिश्चिताऽप्यद्यमनुष्यवाक्कृतिर्न पठ्यते यत्स्मृतिमोह एव सः ॥(६–)

हम अंत में इस परीक्षा-प्रधान बत्तीसीका एक ही पद्य भावसहित देते हैं–

न गौरवाक्रान्तमतिर्विगाहते किमत्र युक्तं किमयुक्तमर्थतः ।
गुणावबोधप्रभवं हि गौरवं कुलांगनावृत्तमतोऽन्यथा भवेत् ॥ (६-२८)

भाव यह है कि लोग किसी न किसी प्रकार के बड़प्पन के आवेश से, प्रस्तुत में क्या युक्त है और क्या अयुक्त है, इसे तत्त्वतः नहीं देखते । परन्तु सत्य बात तो यह है कि बड़प्पन गुणदृष्टि में ही है । इसके सिवाय का बड़प्पन निरा कुलांगना का चरित है । कोई अज्ञना मात्र अपने खानदान के नाम पर सद्वृत्त सिद्ध नहीं हो सकती ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त में यहां मैं सारी उस वेदान्त विषयक द्वात्रिंशिका को मूल मात्र दिए देता हूँ। यद्यपि इसका अर्थ द्वैतसांख्य और वेदान्त उभय दृष्टि से होता है तथापि इसकी खूबी मुझे यह भी जान पड़ती है कि उसमें औपनिषद भाषा जैन तत्त्वज्ञान भी अबाधित रूप से कहा गया है। शब्दों का सेतु पार करके यदि कोई सूक्ष्मप्रज्ञ अर्थ गाम्भीर्य का स्पर्श करेगा तो इसमें से बौद्ध दर्शन का भाव भी पकड़ सकेगा। अतएव इसके अर्थ का विचार मैं स्थान संकोच के कारण पाठकों के ऊपर ही छोड़ देता हूँ। प्राच्य उपनिषदों के तथा गीता के विचारों और वाक्यों के साथ इसकी तुलना करने की मेरी इच्छा है, पर इसके लिए अन्य स्थान उपयुक्त होगा।

अजः पतंगः शबलो विश्वमयो धत्ते गर्भमचरं चरं च।
योऽस्याध्यक्षमकलं सर्वधान्यं वेदातीतं वेद वेद्यं स वेद ॥ १ ॥
स एवैतद्विश्वमधितिष्ठत्येकस्तमेवैनं विश्वमधितिष्ठत्येकम्।
स एवैतद्वेद यदिहास्ति वेद्यं तमेवैतद्वेद यदिहास्ति वेद्यम् ॥ २ ॥
स एवैतद्भवनं सृजति विश्वरूपस्तमेवैतत्सृजति भुवनं विश्वरूपम्।
न चैवैनं सृजति कश्चिन्नित्यजातं न चासौ सृजति भुवनं नित्यजातम् ॥
एकायनशतात्मानमेकं विश्वात्माननमृतं जायमानम्।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति यस्तं च वेद किमृचा करिष्यति ॥४॥
सर्वद्वारा निभृत(ता) मृत्युपाशैः स्वयंप्रभानेकसहस्रपर्वा।
यस्यां वेदाः शेरते यज्ञगर्भाः सैषा गुहा गूहते सर्वमेतत् ॥५॥
भावोभावो निःसतत्त्वो [सतत्त्वो] नारंजनो [रंजनो] यः प्रकारः।
गुणात्मको निर्गुणो निष्प्रभावो विश्वेश्वरः सर्वमयो न सर्वः ॥ ६ ॥
सृष्ट्वा सृष्ट्वा स्वयमेवोपभुंक्ते सर्वश्चायं भूतसर्गो यतश्च।
न चास्यान्यत्कारणं सर्गसिद्धौ न चात्मानं सृजते नापि चान्यान् ॥ ७ ॥
निरिन्द्रियश्चक्षुषा वेत्ति शब्दान् श्रोत्रेण रूपं जिघ्रति जिह्वया च।
पादैर्व्रजीति शिरसा याति तिष्ठन् सर्वेण सर्वं कुरुते मन्यते च ॥ ८ ॥
शब्दातीतः कथ्यते वावदूकैर्ज्ञानातीतो ज्ञायते ज्ञानवद्भिः।
बन्धातीतो बध्यते क्लेशपाशैर्मोहातीतो मुच्यते निर्विकल्पः ॥ ९ ॥
नायं ब्रह्मा न कपर्दी न विष्णुर्ब्रह्मा चायं शंकरश्चाच्युतश्च।
अस्मिन् मूढाः प्रतिमाः कल्पयन्तो(न्ते) ज्ञानश्चायं न च भूयो नमोऽस्तु ॥
आपो वह्निर्मातरिश्वा हुताशः सत्यं मिथ्या वसुधा मेघयानम्।
ब्रह्मा कीटः शंकरस्तार्क्ष्य(र्क्ष्य)केतुः सर्वं सर्वथा सर्वतोऽयम् ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स एवायं निभृता येन सत्त्वाः शश्वद्दुःखा दुःखमेवापियन्ति ।
स एवायमृषयो यं विदित्वा व्यतीत्य नाकममृतं स्वादयन्ति ॥१२॥
विद्याविद्ये यत्र नो संभवेते यन्नासन्नं नो दवीयो न गम्यम् ।
यस्मिन्मृत्युर्नेहते नो तु कामा(कामः) स सोऽक्षरः परमं ब्रह्म वेद्यम् ॥१३॥
ओतप्रोताः पशवो येन सर्वे ओतप्रोताः पशुभिश्चैष सर्वैः ।
सर्वे चेमे पशवस्तस्य होम्यं तेषां चायमीश्वरः संवरेण्यः ॥१४॥
तस्यैवैता रश्मयः कामधेनोर्याः पाप्मानमदुहानाः क्षरन्ति ।
येनाध्याताः पंच जनाः स्वपन्ति [प्रोद्बुद्धास्ते] स्वं परिवर्तमानाः ॥१५॥
तमेवाश्वत्थमृषयो वामनन्ति हिरण्मयं व्यस्तसहस्रशीर्षम् ।
मनःशयं शतशाखप्रशाखं यस्मिन् बीजं विश्वमोतं प्रजानाम् ॥१६॥
स गीयते वीयते चाध्वरेषु मन्त्रान्तरात्मा ऋग्यजुःसामशाखः ।
अधःशयो विततांगो गुहाध्यक्षः स विश्वयोनिः पुरुषो नैकवर्णः ॥१७॥
तेनैवैतद्विततं ब्रह्मजालं दुराचरं दृष्ट्युपसर्गपाशम् ।
अस्मिन्मग्ना मानवा मानशल्यैर्विवेष्यन्ते पशवो जायमानाः ॥१८॥
अयमेवान्तश्चरति देवतानामस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
अयमुद्दण्डः प्राणभुक् प्रेतयानैरेष त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति ॥१९॥
अपां गर्भः सविता वह्निरेष हिरण्मयश्चान्तरात्मा देवयानः ।
एतेन स्तंभिता सुभगा द्यौर्नभश्च गुर्वी चोर्वी सप्त च भीमयादसः ॥२०॥
मनः सोमः सविता चक्षुरस्य घ्राणं प्राणो मुखमस्याज्यपिवः ।
दिशः श्रोत्रं नाभिरंभ्रमब्दयानं पादाविलाः सुरसाः सर्वमापः ॥२१॥
विष्णुर्बीजमंभोजगर्भः शंभुश्चायं कारणं लोकसृष्टौ ।
नैनं देवा विदुते नो मनुष्या देवाश्चैनं विदुरितरेतराश्च ॥ २२ ॥
अस्मिन्नुदेति सविता लोकचक्षुरस्मिन्नस्तं गच्छति चांशुगर्भः
एषोऽजस्रं वर्तते कालचक्रमेतेनायं जीवते जीवलोकः ॥२३॥
अस्मिन् प्राणाः प्रतिबद्धाः प्रजानामस्मिन्नस्ता रथनाभाविवाराः ।
अस्मिन् प्रीते शीर्णमूलाः पतन्ति प्राणाशंसाः फलमिव मुक्तवृन्तम् ॥२४॥
अस्मिन्नेकशतं निहितं मस्तकानामस्मिन् सर्वा भूतयश्चेतयश्च ।
महान्तमेनं पुरुषं वेद वेद्यं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥२५॥
विद्वानज्ञश्चेतनोऽचेतनो वा स्रष्टा निरीहः स ह पुमानात्मतन्त्रः ।
क्षराकारः सततं चाक्षरात्मा विशीर्यन्ते वाचो युक्तयोऽस्मिन् ॥२६॥
बुद्धिबोद्धा बोधनीयोऽन्तरात्मा बाह्यश्चायं स परात्मा दुरात्मा ।
नासावेकं नापृथक् नाभि नोभौ सर्वे चैतत्पशवो यं द्विषन्ति ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वात्मकं सर्वगतं परीतमनादिमध्यान्तमपुण्यपापम् ।
बालं कुमारमजरं च वृद्धं य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२८॥
नास्मिन् ज्ञाते ब्रह्मणि ब्रह्मचर्ये नेज्या जापः स्वस्तयो नो पवित्रम् ।
नाहं नान्यो नो महान्नो कनीयान्निःसामान्यो जायते निर्विशेषः ॥२९॥
नैनं मत्वा शोचते नाप्युपैति नाप्याशास्ते म्रियते जायते वा ।
नास्मिंल्लोके गृह्यते नो परस्मिंल्लोकातीतो वर्तते लोक एव ॥३०॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इस स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥३१॥
नानाकल्पं पश्यतो जीवलोकं नित्यासक्ता व्याधयश्चाधयश्च ।
यस्मिन्नेवं सर्वतः सर्वतत्त्वं दृष्टे देवे नो पुनस्तापमेति ॥३२॥[1]

उपसंहार—

उपसंहार में सिद्धसेन का एक पद्य उद्धृत करता हूँ जिसमें उन्होंने धार्ष्ट्य-पूर्ण वक्तृत्व या पाण्डित्य का उपहास किया है—

दैवखातं च वदनं आत्मायत्तं च वाङ्मयम् ।
श्रोतारः सन्ति चोक्तस्य निर्लज्जः को न पण्डितः ॥

सारांश यह है, कि मुख का गड्ढा तो दैवने ही खोद रखा है, प्रयत्न यह अपने हाथ की बात है और सुननेवाले सर्वत्र सुलभ हैं; इसलिए वक्ता या पण्डित बनने के निमित्त यदि जरूरत है तो केवल निर्लज्जताकी है। एक बार धृष्ट बन कर बोलिए फिर सब कुछ सरल है।

ई० १९४५] [भारतीय विद्या

---

१ इस बत्तीसी का विवेचन श्री पंडित सुखलाल जी ने ही किया है, जो भारतीय विद्याभवन बंबई के द्वारा ई० १९४५ में प्रकाशित है। —सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org